१ बार १०००० सं० १९८४
२ बार ५००० सं० १९८६
३ बार १०००० सं० १९८६
४ बार १०००० सं० १९८९
५ बार १०००० सं० १९९२
६ बार १०००० सं० १९९४

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

लोभमें ही पाप रहता है।
लोभीका संग त्यागकर सत्पुरुषोंकी सेवा करनी चाहिये।

पितामह भीष्म शरशय्यापर पड़े हुए हैं, चारों ओर ऋषिमण्डली बैठी हुई है, धर्मराज युधिष्ठिर धर्मका तत्त्व पूछ रहे हैं और पितामह उन्हें बतला रहे हैं। बहुत-सी बातें जान लेनेके बाद युधिष्ठिरने कहा कि 'हे पितामह! पाप कहाँ रहता है और उसकी उत्पत्ति किससे होती है? कृपापूर्वक इसका रहस्य मुझे बतलाइये।' पितामह बोले—

'हे धर्मराज! मैं तुझे पापके रहनेका स्थान बतलाता हूँ, तू मन लगाकर सुन! लोभ एक बड़ा भारी ग्राह है, इसीसे पापकी उत्पत्ति होती है। पाप-अधर्म, सबसे बड़े दुःख और कपटकी जड़ लोभ ही है। लोभसे ही मनुष्य पाप करते हैं। काम, क्रोध, मोह, माया, मान, पराधीनता, क्षमाहीनता, निर्लज्जता, दरिद्रता, चिन्ता और अपयश आदि लोभसे ही उत्पन्न होते हैं। भोगोंमें

आसक्ति, अति तृष्णा, बुरे कर्म करनेकी इच्छा, कुल-विद्या-रूप-धनका मद,समस्त प्राणियोंसेवैर, सबका तिरस्कार, सबका अविश्वास, सबके साथ टेढ़ापन,परधन-हरण, परस्त्री-गमन, वाणी-से चाहे सो बक उठना, मनमें चाहे सो सोचना, किसीकी भी निन्दा करने लगना, कामके वशमें हो जाना, पेटपरायण होना, विना मौत मरना, ईर्ष्या (डाह) करना, झूठ बोलनेको मजबूर होना, जीभके स्वादके वशमें होना, बुरी बातें सुननेकी इच्छा करनी, परनिन्दा करनी, अपनी बड़ाई मारना, मत्सरता, द्रोह, कुकार्य, सब तरहके साहस और न करने योग्य काम भी कर बैठना आदि अनेक दुर्गुणोंकी लोभसे ही उत्पत्ति होती है। जन्मसे लेकर बुढ़ापेतक किसी भी अवस्थामें लोभका त्याग करना कठिन है। मनुष्य बूढ़ा हो जाता है परन्तु यह लोभ बूढ़ा नहीं होता। गहरे जलसे भरी हुई नदियोंका जल समुद्रमें मिल जाता है परन्तु जैसे उस जलसे समुद्र तृप्त नहीं होता इसी प्रकार चाहे जितना धन प्राप्त हो जाने-पर भी लोभ तृप्त नहीं हो सकता। लोभी मनुष्य-

की कामना कभी पूरी होती ही नहीं। लोभके स्वरूपको देव-दानव, मनुष्य और कोई भी प्राणी ठीक-ठीक नहीं जानते। मनस्वी पुरुषको उचित है कि वह ऐसे लोभ को पूर्णरूपसे जीत ले। मनको वशमें न रखनेवाले लोभी मनुष्योंमें द्रोह, निन्दा, हठीलापन और मत्सरता आदि दुर्गुण अधिकतासे देखनेमें आते हैं। अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले, दूसरोंकी शंकाका समाधान करनेवाले बहुश्रुत पण्डित भी लोभके वशीभूत होकर संसारमें कष्ट ही पाते हैं। लोभी मनुष्य सदैव द्वेष और क्रोधमें डूबे हुए होते हैं, श्रेष्ठ पुरुषोंके शिष्टाचारसे वे सर्वथा भ्रष्ट हो जाते हैं, उनके हृदयमें क्रूरता और वाणीमें मिठास भरा रहता है, भोलेभाले लोग घाससे ढके हुए कुएँकी तरह, प्रायः उनसे धोखा खा जाते हैं, वे धर्मका वेश बनाकर दूसरोंके मनको दुखानेवाले, धर्मका ढोंग रचनेवाले, अनुदार और विश्वासघातक होते हैं। वे युक्तियोंके बलसे (शास्त्रवचनोंका मनमाना अर्थ करके) अनेकों मार्ग खड़े करके लोभके वशीभूत होकर सत्पुरुषोंद्वारा स्थापित धर्ममार्गका नाश

कर देते हैं। उनके स्वार्थके कारण संसारकी व्यवस्थामें उलट-फेर मच जाता है और लोग भी उनकी देखादेखी अधर्माचरण करने लगते हैं। हे युधिष्ठिर! दर्प, क्रोध, मद, हर्ष, शोक, अति अभिमान ये सब दुर्गुण लोभी मनुष्योंमें देखनेमें आते हैं। ऐसे पुरुषोंको सदैव कुटिल जानकर उनसे बचना चाहिये। केवल सत्पुरुषोंके सेवनसे ही भलाई हो सकती है। 'हे राजन्! सत्पुरुषोंका बर्ताव बड़ा ही अनुकरणीय होता है' उनके पास रहकर तुम्हें अपने सन्देहकी निवृत्ति करनी चाहिये। उनके सत्संगसे पुनर्जन्म अथवा परलोकका भय नहीं रहता। वे मांस, मदिरासे सदा दूर रहनेवाले सज्जन, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें (निरन्तर) समान रहते हैं। वे श्रेष्ठ पुरुषोंकी सराहना करनेवाले, जितेन्द्रिय और सुख-दुःखको समान समझनेवाले महानुभाव नित्य सत्यके पालनमें ही तत्पर रहते हैं। वे दान देकर अथवा किसीकी भलाई करके प्रत्युपकारकी इच्छा नहीं रखते। वे दयालु सन्त, पितर, देवता और अतिथियोंका सत्कार करनेवाले

होते हैं। विपद्कालमें भी धर्मको न छोड़नेवाले वे सज्जन सब प्राणियोंके हित-साधनमें ही लगे रहते हैं और वे माँगनेपर परोपकारके लिये अपने प्राणोंतककी भेंट प्रसन्नतापूर्वक कर देते हैं। ऐसे शिष्ट पुरुषोंको संसारका कोई भी पदार्थ या प्राणी सत्पथसे चलायमान नहीं कर सकता। उनका चरित्र आदर्श धर्मभावसे भरा हुआ होता है और वे साधु पुरुषोंके द्वारा आचरित धर्मका कभी लोप नहीं करते। उनसे किसीको उद्वेग नहीं होता क्योंकि उनका लक्ष्य सदैव सब प्राणियोंसे निःस्वार्थ और निष्कपट प्रेम करनेका रहता है, ऐसे स्थिरबुद्धि, अहिंसक सत्पुरुषोंके संगका सभीको लाभ उठाना चाहिये। वे काम, क्रोध, ममता और अहंकारसे सर्वथा शून्य होते हैं। इस प्रकारके मर्यादापालक संतोंसे ही अपनी शंकाओं-का समाधान कराना चाहिये। वे धन या यशके लिये धर्मका आचरण या सदाचारका पालन नहीं करते हैं किन्तु जैसे शरीररक्षाके लिये भोजन आदि क्रिया आवश्यक है ऐसे ही धर्मानुष्ठान भी कर्तव्य समझकर अवश्य करना चाहिये, इसी

सदा सन्तुष्ट

२८ क्रोध, मनकी चपलता या शोक नहीं होता है। वे दूसरोंको धोखा देनेके लिये धर्मका स्वाँग धारण नहीं करते हैं। उनका किसी अंशमें भी कोई प्रयोजन—छिपा हुआ स्वार्थ न होनेसे वे पाखण्डी-धर्मका आश्रय नहीं लेते हैं। वे लोभ या मोहसे किसी भी निर्णयमें भूल नहीं करते। क्योंकि वे सदैव पक्षपातरहित, धर्मशील, सत्यवादी और साफ कहनेवाले होते हैं। ऐसे सत्पुरुषोंके साथ तुम्हें अवश्य प्रेम करना चाहिये, वे लाभ होनेसे हर्ष नहीं मानते और हानि होनेसे खेद नहीं करते। वे ममता और अहङ्कारसे शून्य रहकर सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं। उनकी सर्वत्र समदृष्टि हो जानेसे वे सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय अथवा जीवन-मरण इन सबको समान समझते हैं। वे दृढ़ पुरुषार्थी, नित्य धर्मके मार्गमें ही स्थित रहते हैं। ऐसे महानुभाव पुरुषोंकी तुम्हें जितेन्द्रिय और सावधान होकर सेवा करनी चाहिये। (शान्तिपर्व अध्याय १५८)